Impact Factor (QJIF): 8.47 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 05/June/2026 **IJRAW:** 2026; 5(8):86-90 **Accepted:** 09/July/2026

उपनिषदीय विद्या और अविद्या की शैक्षिक अवधारणा

[*1]प्रिया त्रिपाठी और [2]डॉ. नन्दलाल मिश्रा

[*1]शोध छात्रा, लोक शिक्षा एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत।

[2]प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

'विद्या' और 'अविद्या' की अवधारणाएँ भारतीय शिक्षा-दर्शन की मूलाधार हैं। सामान्यतः विद्या को ज्ञान और अविद्या को अज्ञान समझ लिया जाता है, किंतु वास्तव में इन दोनों की व्याख्या अत्यंत व्यापक एवं गहन है। ईशावास्य उपनिषद के अनुसार विद्या और अविद्या दोनों का समन्वित ज्ञान ही मनुष्य को पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। यहाँ अविद्या का अर्थ केवल अज्ञानता नहीं, बल्कि लौकिक, व्यवहारिक, वं भौतिक पदार्थों के आसक्ति से है, जबकि विद्या का अभिप्राय आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या तथा परम चेतना की अवस्था के प्रतिनिधित्व से है।

वर्तमान कालीन शिक्षा व्यवस्था मुख्यतः रोजगार, प्रतिस्पर्धा, आर्थिक उन्नति तथा तकनीकी दक्षता पर केंद्रित है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की तकनीकी क्षमता का विकास तो हो रहा है, किंतु आत्मचेतना आत्मसंयम नैतिकता, सह-अस्तित्व, करुणा जैसे मानवीय मूल्यों का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है। विद्या व अविद्या दोनों के विभेद को व्यापकता से समझने पर ही इनके असंतुलन को दूर किया जा सकता है; विद्या और अविद्या के विभेद का अंतर ही शैक्षिक दर्शन कहलाता है इसमें शिक्षा को केवल सूचना या कौशल का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मानुशासन, विवेक, चरित्र-निर्माण तथा आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया माना गया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में विद्या एवं अविद्या की उपनिषदों में प्रतिपादित अवधारणाओं का शैक्षिक विश्लेषण किया गया है। इसमें विद्या के अंतर्गत मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एवं चेतना की भूमिका, अविद्या के अंतर्गत लौकिक एवं भौतिक शिक्षा की आवश्यकता, कठोपनिषद में वर्णित श्रेय एवं प्रेय की अवधारणा, आधुनिक शिक्षा की चुनौतियाँ तथा मानव जीवन के परम लक्ष्य के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका का विशद विवेचन किया गया है। शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में विद्या-अविद्या की समन्वित अवधारणा को समाविष्ट किया जाए, तो शिक्षा अधिक मानवीय, मूल्यपरक, समग्र एवं जीवनोपयोगी बन सकती है।

मुख्य शब्द: विद्या, अविद्या, उपनिषद, भारतीय ज्ञान परंपरा, शिक्षा-दर्शन, ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चेतना, श्रेय, प्रेय, समग्र शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा।

1. प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि मानव जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति का माध्यम माना गया है। वैदिक साहित्य, विशेषकर उपनिषदों में शिक्षा का स्वरूप बाह्य या भौतिक जगत की केवल जानकारी तक सीमित नहीं है बल्कि यह अंतर्मन, आत्मा तथा ब्रह्म के रहस्य के अन्वेषण से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि भारतीय शिक्षा-दर्शन में ज्ञान का मूल्य केवल उसकी उपयोगिता के आधार पर नहीं, बल्कि उसके द्वारा व्यक्ति के अंतःकरण में होने वाले रूपांतरण के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

हमारे धर्मग्रंथों विशेषतः उपनिषदों का पूर्ण चिंतन वास्तव में मानव जीवन की यथार्थता तथा आत्मा एवं ब्रह्म कि एकता की अनुभूति पर केंद्रित है। विद्या की दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य भौतिकता व विलासिता की उन्नति नहीं अपितु परम चेतन शक्ति (super consciousness) की पहचान करना, जीवन के शुद्ध बुध निर्विकार स्वरूप को समझना व विवेकपूर्ण जीवन जीना है।

विद्या व अविद्या की शैक्षिक व्यापकता उपनिषदों में देखी जाती है। ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

(ईशावास्य उपनिषद्, मंत्र 9)

अर्थात् जो केवल अविद्या की उपासना करते हैं, वे अंधकार में प्रवेश करते हैं; किंतु जो केवल विद्या में ही आसक्त रहते हैं, वे उससे भी अधिक गहन अंधकार में पड़ जाते हैं। यह मंत्र इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जीवन की पूर्णता केवल आध्यात्मिक ज्ञान या केवल लौकिक ज्ञान से संभव नहीं है। दोनों का संतुलित समन्वय ही वास्तविक शिक्षा है।

***Corresponding Author:** प्रिया त्रिपाठी

इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्ध्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥
(ईशावास्य उपनिषद् मंत्र 11)

अर्थात् जो व्यक्ति विद्या और अविद्या दोनों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करता है, वह अविद्या के माध्यम से लौकिक जीवन की सीमाओं का अतिक्रमण करता है और विद्या के द्वारा अमृतत्व अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति करता है। यह मंत्र भारतीय शिक्षा-दर्शन का मूल आधार प्रस्तुत करता है. जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक, विज्ञान और अध्यात्म, व्यवहार और मूल्य इन सभी का समन्वय अपेक्षित माना गया है।

वर्तमान वैश्विक शिक्षा व्यवस्था ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा व्यावसायिक कौशल के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति कर रही है। इसके बावजूद हिंसा, मानसिक तनाव, पर्यावरणीय संकट, नैतिक पतन, उपभोक्तावाद और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ निरंतर बढ़ रही हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि शिक्षा का केंद्र व्यक्ति के 'होने' (Being) से हटकर केवल 'पाने' (Having) पर केंद्रित हो गया है। शिक्षा जीवन के साधनों का विकास तो कर रही है, किंतु जीवन के उद्देश्य का बोध कराने में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पा रही है।

ऐसी परिस्थिति में उपनिषदों की विद्या और अविद्या की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। यह दृष्टिकोण बताता है कि शिक्षा का लक्ष्य केवल रोजगार या आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि क्षमा, दया, त्याग, विचारशक्ति, संतोष, धैर्य, आत्मचेतना व जगतहित की भावना का विकास भी होना चाहिए | जब शिक्षा मानव के स्वार्थ, वासना और कामना के ऊपर उठकर के हमारी आत्मशक्ति का विकास करती है तब वह वास्तविक अर्थों मे विद्या कहलाती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उपनिषदों में प्रतिपादित विद्या एवं अविद्या की शैक्षिक अवधारणाओं का दार्शनिक एवं शैक्षिक विश्लेषण करना, उनके अंतर्निहित सिद्धांतों को स्पष्ट करना तथा समकालीन शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में शिक्षा को पुनः मानवीय, मूल्यपरक एवं समग्र बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

2. विद्या की अवधारणा

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'विद्या' शब्द का अर्थ केवल पढ़ना-लिखना या सूचनाओं का संग्रह करना नहीं है। संस्कृत धातु 'विद्'का अर्थ है - जानना, प्रकाश प्राप्त करना, सत्य का बोध होना, अतः विद्या वह ज्ञान है जो मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराए, अज्ञान का निवारण करे तथा जीवन के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करे। उपनिषदों में विद्या का स्वरूप आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या और तत्त्वज्ञान के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस दृष्टि से विद्या बाह्य जगत की वस्तुओं का ज्ञान नहीं, बल्कि आत्मा और ब्रह्म के संबंध की अनुभूति है।

भारतीय शिक्षा-दर्शन में विद्या का उद्देश्य केवल बुद्धि का विकास नहीं, बल्कि मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार है। इसलिए उपनिषद शिक्षा को एक आंतरिक रूपांतरण (Inner Transformation) की प्रक्रिया मानते हैं। इस रूपांतरण के माध्यम से मनुष्य इन्द्रियासक्ति, अहंकार, अज्ञान और मोह से मुक्त होकर विवेक, आत्मसंयम, करुणा और सत्य के मार्ग पर अग्रसर होता है। इसीलिए भारतीय परंपरा में विद्या को मुक्ति का साधन कहा गया है।

3. अविद्या की अवधारणा

भारतीय दर्शन में 'अविद्या'शब्द को सामान्यतः अज्ञान के अर्थ में ग्रहण किया जाता है, किंतु उपनिषदों में इसका आशय केवल ज्ञान के अभाव से नहीं है। विशेषतः ईशावास्य उपनिषद और मुण्डक उपनिषद के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अविद्या का एक व्यापक शैक्षिक अर्थ भी है। यहाँ अविद्या का संबंध उस ज्ञान से है जो मनुष्य को भौतिक जगत, सामाजिक जीवन, प्रकृति, विज्ञान तथा व्यवहारिक क्रियाओं का बोध कराता है। इसलिए उपनिषद अविद्या को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते, बल्कि उसके सीमित क्षेत्र और उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं।

किन्तु जब मनुष्य इसी लौकिक ज्ञान को अंतिम सत्य मान लेता है, तब वही अविद्या बंधन का कारण बन जाती है। केवल भौतिक उपलब्धियों, धन, पद, प्रतिष्ठा और इन्द्रियसुख को जीवन का लक्ष्य मान लेना उपनिषदों के अनुसार वास्तविक अज्ञान है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का उद्देश्य आत्मविकास न होकर केवल उपभोग और प्रतिस्पर्धा तक सीमित रह जाता है।

शैक्षिक दृष्टि से अविद्या का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह मनुष्य को संसार में जीविकोपार्जन (Livelihood) के योग्य बनाती है, जबकि विद्या उसे जीवनोपयोगी (Life-worthy) बनाती है। दोनों में विरोध नहीं, बल्कि क्रम और संतुलन का संबंध है। उपनिषदों का संदेश यह है कि लौकिक ज्ञान आवश्यक है, परन्तु यदि वह आत्मज्ञान और नैतिक विवेक से रहित हो, तो उसका उपयोग विनाशकारी भी हो सकता है। आधुनिक विज्ञान और तकनीक की उपलब्धियाँ इसका उदाहरण हैं वे मानव कल्याण का साधन भी बन सकती हैं और विनाश का कारण भी।

इसीलिए उपनिषद शिक्षा के क्षेत्र में संतुलन का आग्रह करते हैं। अविद्या का उचित स्थान है, परन्तु वह विद्या के प्रकाश से निर्देशित होनी चाहिए। तभी शिक्षा वास्तव में समग्र, मानवीय और लोकमंगलकारी बनती है।

4. विद्या में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एवं चेतना की भूमिका: एक शैक्षिक विश्लेषण

हमारे भारतीय दर्शन के अनुसार अंतःकरण के चार प्रमुख भाग हैं - मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन चारों में सत्विकता एवं सद्गुणों का समावेशन होता है तब मानव की चेतना व्यापक अपने वास्तविक स्वरूप या आत्मस्वरूप की अनुभूति करने लगता है | यदि शिक्षा केवल भौतिक जगत तक ही सीमित रहे व अध्यात्मिकता का विकास न कर सके या बुद्धि से अज्ञान का आवरण न हटा सके तो ऐसी समस्त शिक्षा अविद्या है विद्या नहीं |

4.1. मन (Mind): शिक्षा का प्रथम आधार

भारतीय दर्शन में मन को संकल्प-विकल्प की शक्ति माना गया है या हम कह सकते हैं की मन ही इन्द्रियों का अधिस्ठाता व इच्छाओं, भावनाओं और विचारों का केंद्र होता है। यदि मन कामनाओ व वासनाओ से ग्रसित है तो यह मन अविद्या क्षेत्र मे काम करता है इसके विपरीत यदि मन ज्ञान, विवेक, वैराग्य आदि सद्गुणों से सम्पन्न होता है तब यही विद्या के क्षेत्र मे कार्यरत रहता है।

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् मे कहा गया है की-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥ २॥
(ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)

अर्थात मनुष्य के बंधन और मुक्ति दोनों का मूल कारण मन ही है। विषयों में आसक्त मन बंधन या अविद्या का कारण बनता है और विषयासक्ति से रहित मन मुक्ति या विद्या का साधन माना गया है।

इसी प्रकार --------

कठोपनिषद में कहा गया है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
(कठोपनिषद् 1.3.3)

अर्थात् शरीर रथ है, आत्मा उसका स्वामी है, बुद्धि सारथी है और मन लगाम के समान है।
इस उपमा का गहरा शैक्षिक अर्थ है। यदि मन असंयमित होगा तो इन्द्रियाँ विषयों की ओर भागेंगी और शिक्षा का उद्देश्य केवल बाह्य उपलब्धियों तक सीमित रह जाएगा। परन्तु यदि मन संयमित होगा, तो विद्यार्थी एकाग्रता, अनुशासन, धैर्य और आत्मनियंत्रण विकसित करेगा। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का प्रथम कार्य मन का परिष्कार है।

4.2. बुद्धि (Intellect): विवेक का विकास

बुद्धि वह शक्ति है जिसके माध्यम से मनुष्य निर्णय करता है. सत्य-असत्य में भेद करता है तथा जीवन की दिशा निर्धारित करता है। उपनिषदों में बुद्धि को केवल तार्किक क्षमता नहीं, बल्कि विवेक (Discriminative Wisdom) का आधार माना गया है।
यदि शिक्षा केवल सूचना प्रदान करे, और बुद्धि में विवेक का अंकुश न रखे तो ज्ञान ब्यक्ति के लिए, समाज के लिए व राष्ट्र के लिए कल्याणकारी नहीं रह जाता। आज की वर्तमान स्तिथि मे विज्ञान और प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति के बाद युद्ध, पर्यावरण संकट, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन यह संकेत देते हैं कि ज्ञान बढ़ा है, पर विवेक का विकास अपेक्षित नहीं हुआ।

4.3. चित्त (Conscious Memory): संस्कारों का आधार

भारतीय मनोविज्ञान में चित्त को संस्कारों, स्मृतियों और अनुभवों का भंडार माना गया है। मनुष्य के व्यवहार, दृष्टिकोण और व्यक्तित्व का निर्माण केवल वर्तमान ज्ञान से नहीं, बल्कि चित्त में संचित संस्कारों से भी होता है।
उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य चित में साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षटसंपत्ति एवं मुमुक्षा) जैसे सद्गुणों का विकास करना है।
यदि चित्त- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से भर जाए तो शिक्षा भौतिकता की प्राप्ति का साधन मात्र बन जाती है। आधुनिकता के दौर में मानव में विशेषतः युवाओ का चित्त अज्ञान वश इतना अस्थिर हो चुका है कि वो कभी स्वयंको जनने की जरूरत नहीं समझते वरन अपने को लैपटॉप, मोबाईल, सोशल मीडिया एवं अन्य प्रकार के आधुनिक संचारो में लिप्त रखते है। अस्थिरता अविद्या के अधिक्य की तरफ संकेत करती है।
इसीलिये मानव मात्र ही विद्या एवं अविद्या की मूल धारणा को समझकर अविद्या को विद्या के प्रकाश के माध्यम से अनाशक्त भाव से जान सकता है। यही कारण है कि प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में केवल विषय-ज्ञान नहीं दिया जाता था, बल्कि जीवन-शैली, आचार-विचार, गुरु-सेवा, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व के माध्यम से चित्त का निर्माण किया जाता था। इस दृष्टि से शिक्षा केवल कक्षा में होने वाली प्रक्रिया नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन का संस्कार है।

4.4. अहंकार (Ego): आत्मबोध में सबसे बड़ी बाधा

अहंकार का अर्थ स्वस्थ आत्मविश्वास नहीं, बल्कि स्वयं को शरीर, पद, धन, ज्ञान या उपलब्धियों तक सीमित मान लेने की मानसिक प्रवृत्ति है। यही अहंकार मनुष्य को आत्मज्ञान से दूर ले जाता है। अविद्या मे जब मानव बहुत रुचि लेता है तो अहंकार का प्रारंभ हो जाता है जैसे यदि शिक्षा केवल प्रतियोगिता, उपलब्धि, और व्यक्तिगत सफलता पर आधारित हो तो अहंकार का विकास होता है।
इसके विपरीत यदि शिक्षा उपनिषदों अर्थात विद्या पर आधारित होती है तो विनम्रता. आत्मसंयम और सहयोग की भावना का विकास करती है।
भारतीय परंपरा में कहा गया है-

सा विद्या या विमुक्तये।
अर्थात् वही विद्या है जो मुक्त करे।

यह मुक्ति केवल जन्म-मरण के बंधन से नहीं, बल्कि अहंकार, लोभ, मोह और अज्ञान से भी है। इसलिए उपनिषदों की दृष्टि में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य अहंकार का पोषण नहीं, बल्कि उसका परिष्कार है।

4.5 चेतना (Consciousness): विद्या का अंतिम लक्ष्य

यही वह शक्ति है जिसके माध्यम से मनुष्य स्वयं को, समाज को और समस्त सृष्टि को एकात्म भाव से अनुभव करता है। विद्या का अंतिम उद्देश्य चेतना का विस्तार करना है।
छान्दोग्य उपनिषद का प्रसिद्ध महावाक्य-

तत्त्वमसि।
(छान्दोग्य उपनिषद् 6.8.7)

यह उद्घोष करता है कि जीव और ब्रह्म का मूल स्वरूप एक ही है। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद का महावाक्य-

अहं ब्रह्मास्मि।
(बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.10)

आत्मबोध और व्यापक चेतना की अनुभूति का द्योतक है।

5. अविद्या में भौतिक जगत की शिक्षा समकालीन शिक्षा व्यवस्था के आलोक में विश्लेषण

आधुनिक युग में शिक्षा का स्वरूप विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, चिकित्सा, प्रबंधन तथा व्यावसायिक कौशल के विकास की ओर उन्मुख है। इन क्षेत्रों ने मानव जीवन को अधिक सुविधाजनक, सुरक्षित और उत्पादक बनाया है। संचार, स्वास्थ्य, परिवहन, कृषि, उद्योग तथा अनुसंधान के क्षेत्र में हुई प्रगति इस बात का प्रमाण है कि लौकिक ज्ञान मानव सभ्यता के विकास के लिए अनिवार्य है क्योंकि भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना संतुलित सामाजिक व्यवस्था की कल्पना संभव नहीं है।
किन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक सफलता, प्रतिस्पर्धा, उपभोग, व्यक्तिगत उपलब्धि और रोज़गार तक सीमित हो जाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा मनुष्य को दक्ष कर्मचारी तो बना देती है, परन्तु आवश्यक नहीं कि वह उसे संवेदनशील, नैतिक और उत्तरदायी नागरिक भी बनाए।
समकालीन शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख उद्देश्य मानव संसाधन (Human Resource) का निर्माण है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सफलता का मूल्यांकन मुख्यतः परीक्षा परिणाम, अंक, रोजगार, वेतन तथा व्यावसायिक उपलब्धियों के आधार पर किया जाता है। परिणामस्वरूप शिक्षा का मानवीय पक्ष जैसे - नैतिकता, सहानुभूति, आत्मानुशासन, पर्यावरणीय संवेदनशीलता, सामाजिक उत्तरदायित्व और आत्मचिंतन-क्रमशः कमजोर होता जा रहा है। बढ़ते समय के साथ में मानसिक तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धात्मक दबाव, सामाजिक अलगाव, पर्यावरणीय संकट तथा नैतिक मूल्यों का क्षरण इस बात का संकेत हैं कि केवल भौतिक ज्ञान मानव जीवन की सभी

समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। ज्ञान की वृद्धि के साथ यदि विवेक, आत्मसंयम और करुणा का विकास न हो, तो वही ज्ञान विनाशकारी भी बन सकता है। परमाणु ऊर्जा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा जैव-प्रौद्योगिकी जैसी आधुनिक उपलब्धियाँ इसका उदाहरण हैं इनका उपयोग मानव कल्याण के लिए भी किया जा सकता है और विनाश के लिए भी। इसलिए विद्या के यथार्थ स्वरूप मे नैतिक चेतना को अनिवार्य मानते हैं। इस संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) भी उल्लेखनीय है, जिसमें समग्र विकास, नैतिक मूल्यों, भारतीय ज्ञान परंपरा, आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता और बहुआयामी शिक्षा पर बल दिया गया है। यह दृष्टिकोण विद्या की उस शैक्षिक अवधारणा के निकट है, जिसमें शिक्षा का उद्देश्य केवल दक्षता नहीं, बल्कि उत्तरदायी, संवेदनशील और विवेकशील नागरिक का निर्माण है। इस प्रकार समकालीन शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनर्भरण केवल सांस्कृतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि मानवीय और वैश्विक आवश्यकता भी है।

6. श्रेय और प्रेय

इस संदर्भ में कठोपनिषद में वर्णित श्रेय और प्रेय की अवधारणा भारतीय शिक्षा-दर्शन की आधारशिला मानी जाती है। यह अवधारणा केवल नैतिक उपदेश नहीं, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व-निर्माण, मूल्य-शिक्षा और जीवन-दृष्टि का मूल सिद्धांत प्रस्तुत करती है।
कठोपनिषद में यमराज नचिकेता को शिक्षा देते हुए कहते हैं-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

(कठोपनिषद् 1.2.2)

अर्थात् मनुष्य के समक्ष दो मार्ग आते हैं - श्रेयऔर प्रेय। विवेकशील व्यक्ति दोनों का परीक्षण करके श्रेय का चयन करता है, जबकि अल्पदर्शी व्यक्ति तत्काल सुख, सुविधा और लाभ के कारण प्रेय का चुनाव करता है।

6.1. श्रेय का शैक्षिक स्वरूप

श्रेय का अर्थ है वह मार्ग जो दीर्घकालीन कल्याण, आत्मविकास, नैतिक, उत्थान और आध्यात्मिक प्रगति की ओर ले जाए। यह मार्ग प्रायः कठिन, अनुशासित और धैर्यपूर्ण होता है, किन्तु इसका परिणाम स्थायी और कल्याणकारी होता है।
शैक्षिक दृष्टि से श्रेय का अर्थ है-

- सत्य की खोज करना।
- आत्मानुशासन का विकास।
- चरित्र-निर्माण को प्राथमिकता देना।
- समाज और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह।
- ज्ञान का उपयोग लोकमंगल के लिए करना।
- आत्मचिंतन और आत्मबोध की दिशा में अग्रसर होना।

उपनिषदों के अनुसार शिक्षा तभी सार्थक है जब वह विद्यार्थी को इन मूल्यों की ओर उन्मुख करे। इसलिए श्रेय केवल आध्यात्मिक आदर्श नहीं, बल्कि शिक्षा का व्यावहारिक उद्देश्य भी है।

6.2. प्रेय का शैक्षिक स्वरूप

प्रेय का अर्थ है जो तात्कालिक रूप से सुखद, आकर्षक और सुविधाजनक प्रतीत हो। यह इन्द्रियसुख, भौतिक उपलब्धि, प्रतिष्ठा, उपभोग और व्यक्तिगत लाभ से जुड़ा होता है।
शिक्षा के क्षेत्र में प्रेय की प्रवृत्ति तब दिखाई देती है जब-

- शिक्षा का उद्देश्य केवल उच्च वेतन प्राप्त करना रह जाए।
- परीक्षा में अधिक अंक ही सफलता का एकमात्र मानदंड बन जाए।
- ज्ञान के स्थान पर केवल प्रमाणपत्र (Degree) का महत्व बढ़ जाए।
- प्रतियोगिता सहयोग से अधिक महत्वपूर्ण हो जाए।
- नैतिकता की अपेक्षा सफलता को प्राथमिकता दी जाए।

7. आधुनिक संदभों में दी जा रही शिक्षा तथा विद्या-अविद्या अवधारणा की प्रासंगिकता

इक्कीसवीं शताब्दी का शिक्षा-परिदृश्य विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण तथा डिजिटल क्रांति से गहराई से प्रभावित है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों में तकनीकी दक्षता, व्यावसायिक क्षमता, नवाचार और प्रतिस्पर्धात्मक योग्यता का विकास करना है। इस दृष्टि से आधुनिक शिक्षा ने मानव जीवन को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं तथा स्वास्थ्य, संचार, अनुसंधान, उद्योग और आर्थिक विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। इसलिए आधुनिक शिक्षा की उपयोगिता निर्विवाद है।
किन्तु शिक्षा का मूल्य केवल उसकी उपयोगिता से निर्धारित नहीं होता, बल्कि इस बात से भी होता है कि वह मनुष्य के व्यक्तित्व, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को किस सीमा तक विकसित करती है। वर्तमान समय में मानसिक तनाव, अवसाद, अकेलापन, हिंसा, पर्यावरणीय संकट, भ्रष्टाचार, उपभोक्तावाद और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ यह संकेत करती हैं कि ज्ञान और तकनीक की प्रगति के बावजूद मानवीय मूल्यों का विकास अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षा का विकास मुख्यतः बौद्धिक और तकनीकी आयामों तक सीमित रहा है, जबकि नैतिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक आयाम अपेक्षाकृत उपेक्षित रहे हैं।
आधुनिक शिक्षा में आलोचनात्मक चिंतन (Critical Thinking), समस्या-समाधान (Problem Solving) और रचनात्मकता (Creativity) पर बल दिया जा रहा है। वर्तमान शिक्षा की एक प्रमुख चुनौती यह है कि सफलता का मूल्यांकन प्रायः अंक, प्रमाणपत्र, पद और आर्थिक उपलब्धि के आधार पर किया जाता है। इससे विद्यार्थियों में प्रतियोगिता बढ़ती है, किन्तु सहयोग, सहानुभूति और नैतिक उत्तरदायित्व अपेक्षित रूप से विकसित नहीं हो पाते। उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का मूल्य इस बात में है कि वह व्यक्ति को स्वयं के साथ, समाज के साथ और प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित करना सिखाए।
इस संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020का समग्र शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा, मूल्य-शिक्षा, बहुविषयक अध्ययन और अनुभवात्मक अधिगम पर बल देना उपनिषदों की शैक्षिक दृष्टि के निकट प्रतीत होता है। यदि इन सिद्धांतों को व्यवहार में प्रभावी ढंग से लागू किया जाए, तो शिक्षा अधिक समावेशी, मूल्यपरक और जीवनोपयोगी बन सकती है।
अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक शिक्षा विद्या-अविद्या की अवधारणा परस्पर विरोधी नहीं हैं। आधुनिक शिक्षा जहाँ मनुष्य को सक्षम (Competent) बनाती है, वही विद्या उसे सजग (Conscious), संवेदनशील (Sensitive) और उत्तरदायी (Responsible) बनाती है। दोनों का समन्वय ही शिक्षा को वास्तव में समग्र और मानव-केंद्रित बना सकता है।

8. मानव जीवन का लक्ष्य और शिक्षा

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का अंतिम उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं, बल्कि मानव जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति है। उपनिषदों के अनुसार मनुष्य का वास्तविक स्वरूप शरीर या मन तक सीमित नहीं, बल्कि वह चैतन्य स्वरूप आत्मा है। अतः शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध

कराना है।
विद्या बार-बार इस बात पर बल देती हैं कि मनुष्य का जीवन केवल भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए नहीं, बल्कि आत्मविकास, सत्य की खोज और लोकमंगल के लिए है। जब शिक्षा मनुष्य को केवल संसाधनों का उपभोक्ता बनाती है, तब उसका विकास अधूरा रह जाता है।
तैत्तिरीय उपनिषद में दीक्षांत उपदेश के रूप में कहा गया है-

सत्यं वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो और स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो।
यह उपदेश स्पष्ट करता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि सत्यनिष्ठ जीवन जीने की क्षमता विकसित करना है।
इसी प्रकार मुण्डक उपनिषद का वाक्य-
सत्यमेव जयते।
यह दर्शाता है कि सत्य ही जीवन और समाज की स्थायी आधारशिला है। शिक्षा का कार्य केवल सफलता दिलाना नहीं, बल्कि सत्य के प्रति प्रतिबद्धता विकसित करना भी है।
शैक्षिक दृष्टि से मानव जीवन का लक्ष्य चार स्तरों पर समझा जा सकता है-

i). **व्यक्तिगत विकास:** आत्मविश्वास, आत्मसंयम, आत्मचिंतन और आत्मबोध।
ii). **सामाजिक विकास:** सहिष्णुता, सेवा, सहयोग, न्याय और उत्तरदायित्व।
iii). **सांस्कृतिक विकास:** भारतीय ज्ञान परंपरा, नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण।
iv). **आध्यात्मिक विकास:** आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध तथा समस्त सृष्टि के प्रति एकात्म भाव।

निष्कर्ष

आज के अनियंत्रित परिवर्तन के युग में आवश्यक हो गया है कि आधुनिक शिक्षा को विद्या – अविद्या के प्रादर्श में स्थापित किया जाय। मात्र यह कह देना पर्याप्त नहीं होगा, कि भारतीय ज्ञान परमारा को एक बार खँगालो। हम, वेद, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, रामचरितमानंस, रामायण, महाभारत इत्यादि पलटकर ज्ञान में वृद्धि तो कर सकते है पर मानवता के उद्धार उद्धार की शिक्षा, तो शिक्षा नीति में परिवर्तन करके के ही दी जा सकती है। इंसान का अस्तित्व भी चेतना और शरीर से मिलकर ही बनता है चेतना अर्थात पुरुष और शरीर अर्थात प्रकति के समन्वयन से ही संभव हो पाती है। इस सन्दर्भ में विद्या– अविद्या की अवधारणा बेहद प्रासंगिक है |

संदर्भ सूची (References)

1. ईशावास्य उपनिषद्। शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय 40.
2. कठोपनिषद्। कृष्ण यजुर्वेद, कठ शाखा।
3. मुण्डक उपनिषद्। अथर्ववेद।
4. तैत्तिरीय उपनिषद्। कृष्ण यजुर्वेद।
5. छान्दोग्य उपनिषद्। सामवेद।
6. बृहदारण्यक उपनिषद्। शुक्ल यजुर्वेद।
7. ब्रह्मबिन्दूपनिषद्। कृष्ण यजुर्वेद
8. Radhakrishnan S. *The Principal Upanishads*. George Allen & Unwin; 1953.
9. Radhakrishnan S. *The Hindu View of Life*. George Allen & Unwin; 1927.
10. Aurobindo S. *The Upanishads*. Sri Aurobindo Ashram; 1971.
11. Vivekananda S. *Complete Works of Swami Vivekananda*. Advaita Ashrama.
12. Hiriyanna M. *Outlines of Indian Philosophy*. Motilal Banarsidass; 1993.
13. Sharma CD. *A Critical Survey of Indian Philosophy*. Motilal Banarsidass; 2016.
14. Ranganathananda S. *The Message of the Upanishads*. Bharatiya Vidya Bhavan.
15. Dasgupta S. *A History of Indian Philosophy*. Vol. I. Cambridge University Press; 1922.